

राजनीति के रंगमंच पर नई चुनौतियाँ: आधुनिक भारत की कहानी

भारतीय लोकतंत्र की यात्रा में हम एक ऐसे दौर से गुजर रहे हैं जहाँ राजनीतिक परिदृश्य में कई जटिल समस्याएँ उभरकर सामने आ रही हैं। देश की राजनीति में जहाँ एक और पारिवारिक राजनीति (consanguineous politics) की गहरी जड़ें दिखाई देती हैं, वहाँ दूसरी ओर जनता की भावनाओं को भड़काने वाले नेताओं (demagogue) का प्रभाव भी लगातार बढ़ता जा रहा है। इन चुनौतियों के बीच आम नागरिक अक्सर असहाय महसूस करता है, जबकि शासन तंत्र की धीमी गति (dilatory approach) समस्याओं को और भी जटिल बना देती है।

पारिवारिक राजनीति का जाल

भारतीय राजनीति में पारिवारिक उत्तराधिकार एक पुरानी परंपरा बन चुकी है। देश के कई प्रमुख राजनीतिक दलों में सत्ता का हस्तांतरण रक्त संबंधों (consanguineous connections) के आधार पर होता है। यह प्रवृत्ति केवल राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं, बल्कि राज्य और स्थानीय स्तर की राजनीति में भी गहराई से व्याप्त है। जब किसी राजनीतिक परिवार के सदस्य पीढ़ी दर पीढ़ी सत्ता पर काबिज होते हैं, तो लोकतंत्र की मूल भावना कमज़ोर होने लगती है।

इस व्यवस्था में योग्यता और क्षमता के बजाय जन्म और पारिवारिक संबंध अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं। नए और प्रतिभाशाली नेताओं के लिए राजनीति में प्रवेश करना कठिन हो जाता है। यह स्थिति न केवल लोकतांत्रिक मूल्यों के विरुद्ध है, बल्कि समाज में असमानता और निराशा को भी बढ़ावा देती है। जब सामान्य परिवार से आने वाला एक योग्य व्यक्ति देखता है कि राजनीतिक अवसर केवल विशेष परिवारों तक ही सीमित हैं, तो उसकी राजनीतिक प्रणाली में आस्था कम हो जाती है।

भावनात्मक राजनीति का उभार

आधुनिक भारतीय राजनीति में एक और खतरनाक प्रवृत्ति तेजी से बढ़ रही है - भावनाओं को भड़काने वाले नेताओं का उदय। ये demagogue अपने प्रभावशाली भाषणों और नारों के माध्यम से जनता की भावनाओं को अपने पक्ष में मोड़ने की कोशिश करते हैं। वे जटिल समस्याओं का सरलीकृत समाधान प्रस्तुत करते हैं और किसी विशेष समुदाय या वर्ग को दोषी ठहराकर लोगों में गुस्सा भरने का काम करते हैं।

इस तरह के नेता अक्सर तथ्यों की परवाह किए बिना भावनात्मक अपील करते हैं। वे धर्म, जाति, भाषा या क्षेत्रीयता के आधार पर समाज को विभाजित करने में संकोच नहीं करते। उनके भाषणों में तर्क और विवेक की जगह नारेबाजी और आरोप-प्रत्यारोप की राजनीति होती है। इस तरह की राजनीति से समाज में घृणा और हिंसा का वातावरण बनता है, जो लोकतंत्र के लिए गंभीर खतरा है।

आलोचना की संस्कृति

राजनीतिक विमर्श में एक और समस्या है - कटु आलोचना और गाली-गलौज की भाषा का बढ़ता प्रचलन। नेता एक-दूसरे के खिलाफ लगातार diatribe में लगे रहते हैं। संसद हो या विधानसभा, टेलीविजन की बहस हो या सोशल मीडिया - हर जगह गालियों और व्यक्तिगत हमलों की बाढ़ आई हुई है। रचनात्मक आलोचना की जगह विध्वंसक आक्रमणों ने ले ली है।

जब राजनीतिक नेता नीतियों और विचारों की बजाय व्यक्तिगत चरित्र पर हमला करते हैं, तो सार्वजनिक बहस का स्तर गिर जाता है। मुद्दे पीछे रह जाते हैं और व्यक्तिगत शत्रुता सामने आ जाती है। इससे न केवल राजनीतिक संस्कृति प्रभावित होती है, बल्कि युवा पीढ़ी को भी गलत संदेश जाता है। समाज में असहिष्णुता बढ़ती है और विभिन्न मतों को सम्मान देने की भावना कमजोर होती है।

प्रशासनिक सुस्ती की समस्या

भारतीय शासन व्यवस्था की एक बड़ी कमजोरी है - निर्णय लेने और उन्हें लागू करने में अत्यधिक देरी। सरकारी कार्यालयों में dilatory रवैया आम बात है। फाइलें महीनों और सालों तक एक मेज से दूसरी मेज पर घूमती रहती हैं। जरूरी निर्णय टलते रहते हैं और नागरिकों को न्याय पाने के लिए लंबा इंतजार करना पड़ता है।

यह धीमी गति केवल प्रशासनिक कार्यालयों तक सीमित नहीं है। न्यायिक प्रणाली में भी मामले दशकों तक लटके रहते हैं। विकास परियोजनाएँ अपने निर्धारित समय से कई गुना देर से पूरी होती हैं। इस सुस्ती का खामियाजा आम नागरिक को भुगताना पड़ता है। देरी से होने वाला न्याय अन्याय के बराबर होता है, और देरी से पूरी होने वाली परियोजनाएँ विकास की रफ्तार को धीमा कर देती हैं।

उदासीन दृष्टिकोण का खतरा

इन सभी समस्याओं के बीच एक और चिंताजनक प्रवृत्ति देखने को मिलती है - समाज का एक बड़ा हिस्सा राजनीति के प्रति nonchalant या उदासीन हो चुका है। बहुत से लोग, खासकर शिक्षित मध्यम वर्ग, राजनीतिक प्रक्रिया से खुद को अलग रखना पसंद करते हैं। वे मतदान नहीं करते, सार्वजनिक मुद्दों पर बहस में भाग नहीं लेते, और राजनीति को एक गंदा खेल मानकर उससे दूर रहते हैं।

यह उदासीनता लोकतंत्र के लिए बेहद नुकसानदेह है। जब सचेत और शिक्षित नागरिक राजनीतिक प्रक्रिया से दूर हो जाते हैं, तो अवसरवादी तत्व और भ्रष्ट नेता मजबूत होते हैं। जनता की भागीदारी के बिना लोकतंत्र केवल एक खोखला ढाँचा बनकर रह जाता है। इसलिए यह जरूरी है कि नागरिक राजनीतिक प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लें और अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति सजग रहें।

समाधान की दिशा में

इन चुनौतियों से निपटने के लिए बहुआयामी प्रयासों की जरूरत है। सबसे पहले, राजनीतिक दलों को आंतरिक लोकतंत्र को मजबूत करना होगा। नेतृत्व चुनने में पारदर्शिता लानी होगी और योग्यता को प्राथमिकता देनी होगी। चुनाव सुधारों के माध्यम से धन और बाहुबल के प्रभाव को कम करना होगा।

शिक्षा प्रणाली में नागरिक शास्त्र और लोकतांत्रिक मूल्यों की शिक्षा को मजबूत करना होगा। युवाओं को राजनीतिक जागरूकता और सामाजिक जिम्मेदारी के बारे में सिखाना होगा। मीडिया को भी अपनी जिम्मेदारी समझनी होगी और सनसनीखेज खबरों की जगह तथ्यात्मक और संतुलित रिपोर्टिंग करनी होगी।

प्रशासनिक सुधार भी जरूरी हैं। ई-गवर्नेंस और डिजिटलीकरण से पारदर्शिता बढ़ाई जा सकती है और भ्रष्टाचार को कम किया जा सकता है। समय-सीमा निर्धारित करने और उसे लागू करने की सख्त व्यवस्था बनानी होगी। न्यायिक सुधारों के माध्यम से न्याय प्रणाली को तेज और प्रभावी बनाना होगा।

निष्कर्ष

भारतीय लोकतंत्र की यात्रा में अनेक उतार-चढ़ाव आए हैं, लेकिन यह व्यवस्था अब तक टिकी हुई है। हालाँकि, वर्तमान चुनौतियाँ गंभीर हैं और इनका समाधान तत्काल जरूरी है। पारिवारिक राजनीति, भावनात्मक उत्तेजना फैलाने वाले नेता, कटु आलोचना की संस्कृति, प्रशासनिक सुस्ती और नागरिक उदासीनता - ये सभी लोकतंत्र की जड़ों को कमज़ोर करते हैं।

इन समस्याओं का समाधान केवल सरकार या राजनीतिक दलों की जिम्मेदारी नहीं है। प्रत्येक नागरिक को अपनी भूमिका निभानी होगी। सक्रिय भागीदारी, जागरूकता और लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता ही इन चुनौतियों से निपटने का रास्ता है। केवल तभी हम एक स्वस्थ, मजबूत और समावेशी लोकतंत्र का निर्माण कर सकते हैं, जो हर नागरिक को समान अवसर और न्याय प्रदान करे।

विपरीत दृष्टिकोणः क्या हम राजनीति को गलत नज़रिए से देख रहे हैं?

जब भी भारतीय राजनीति की बात होती है, तो आलोचनाओं की बाढ़ आ जाती है। पारिवारिक राजनीति, भावनात्मक नेतृत्व, धीमी प्रशासनिक व्यवस्था - इन सभी को लोकतंत्र के लिए खतरा बताया जाता है। लेकिन क्या हम इन मुद्दों को सही परिप्रेक्ष्य में देख रहे हैं? क्या यह संभव है कि हम अपने लोकतंत्र की वास्तविकताओं को समझने में कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं को नज़रअंदाज कर रहे हैं?

पारिवारिक राजनीति: अनुभव की विरासत

पारिवारिक राजनीति को अक्सर राजशाही की तरह देखा जाता है, लेकिन यह तुलना उचित नहीं है। जब किसी राजनीतिक परिवार का सदस्य राजनीति में आता है, तो वह केवल नाम के सहारे नहीं चलता। उसे भी चुनाव जीतने होते हैं, जनता का भरोसा हासिल करना होता है। यदि वह अयोग्य या अक्षम है, तो मतदाता उसे अस्वीकार कर देते हैं - इसके कई उदाहरण हमारे सामने हैं।

इसके अलावा, राजनीतिक परिवारों में पले-बढ़े व्यक्ति को राजनीति की बारीकियों की समझ बचपन से ही मिल जाती है। वे सार्वजनिक जीवन की चुनौतियों से परिचित होते हैं और शासन के तौर-तरीकों को करीब से देखते हैं। यह अनुभव उन्हें बेहतर नेतृत्व के लिए तैयार कर सकता है। क्या हम डॉक्टरों, वकीलों या व्यापारियों के बच्चों को उनके पारिवारिक पेशे में जाने के लिए दोषी ठहराते हैं? फिर राजनीति में ऐसा क्यों?

भावनात्मक नेतृत्व: जनता से जुड़ाव का माध्यम

भावनाओं को भड़काने वाले नेताओं को खतरनाक माना जाता है, लेकिन हर भावनात्मक नेता demagogue नहीं होता। भारत जैसे विविधतापूर्ण और बड़े देश में जनता से जुड़ने के लिए भावनात्मक अपील जरूरी है। करोड़ों लोग, जो शिक्षित नहीं हैं या जिनके पास जटिल नीतियों को समझने का समय नहीं है, वे भावनात्मक संदेशों के माध्यम से ही राजनीति से जुड़ पाते हैं।

महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, लाल बहादुर शास्त्री - सभी महान नेताओं ने जनता की भावनाओं को समझा और उन्हें संबोधित किया। क्या इससे वे demagogue बन गए? राजनीति केवल तर्क और आंकड़ों का खेल नहीं है; यह लोगों की आशाओं, सपनों और चिंताओं से जुड़ा है। एक प्रभावशाली नेता वही है जो जनता की नब्ज को समझे और उनकी भावनाओं का सम्मान करे।

कठोर आलोचना: लोकतंत्र का अभिन्न अंग

राजनीतिक बहसों में कटुता और diatribe को लोकतंत्र के पतन का संकेत माना जाता है। लेकिन क्या वास्तव में ऐसा है? संसदीय लोकतंत्र की परंपरा में तीखी बहस और कठोर आलोचना हमेशा से रही है। ब्रिटिश संसद से लेकर अमेरिकी कांग्रेस तक - हर जगह तीखे शब्दों का प्रयोग होता है।

जब विपक्ष सत्ता पक्ष की कड़ी आलोचना करता है, तो यह जवाबदेही सुनिश्चित करने का एक तरीका है। यदि सभी नेता नरम और विनम्र भाषा का ही प्रयोग करें, तो क्या सत्ता के दुरुपयोग को रोका जा सकेगा? कभी-कभी कठोर शब्द ही ध्यान

आकर्षित कर पाते हैं और जनता में जागरूकता लाते हैं। समस्या तब होती है जब व्यक्तिगत हमले नीतिगत आलोचना की जगह ले लेते हैं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि सभी तीखी आलोचनाएँ गलत हैं।

प्रशासनिक धीमापन: सोच-समझकर निर्णय

भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था की dilatory प्रकृति की अक्सर आलोचना होती है। लेकिन क्या हर फैसले को तत्काल लेना ही सही है? भारत एक जटिल देश है - 140 करोड़ लोग, अनेक भाषाएँ, धर्म, संस्कृतियाँ। यहाँ कोई भी निर्णय लाखों लोगों को प्रभावित करता है।

जल्दबाजी में लिए गए फैसले अक्सर विनाशकारी साबित होते हैं। विमुद्रीकरण जैसे अचानक निर्णयों ने कितनी समस्याएँ खड़ी कीं, यह सबने देखा। धीमी प्रक्रिया का एक फायदा यह है कि विभिन्न पक्षों को अपनी बात रखने का मौका मिलता है, विरोध दर्ज कराया जा सकता है, और नीतियों को बेहतर बनाया जा सकता है। जो हमें सुस्ती लगती है, वह दरअसल सोच-विचार और परामर्श की प्रक्रिया हो सकती है।

नागरिक उदासीनता: संतुष्टि का संकेत?

जब लोग राजनीति से nonchalant रवैया अपनाते हैं, तो इसे नकारात्मक माना जाता है। लेकिन क्या यह संभव नहीं कि बहुत से लोग राजनीति से दूर इसलिए रहते हैं क्योंकि उनका जीवन सामान्य रूप से चल रहा है? यदि लोगों के पास रोजगार है, बुनियादी सुविधाएँ उपलब्ध हैं, और कानून-व्यवस्था ठीक है, तो वे राजनीति में सक्रिय भागीदारी क्यों करेंगे?

हर नागरिक से यह अपेक्षा करना कि वह राजनीति में गहरी रुचि रखे, अव्यावहारिक है। लोगों के अपने जीवन, परिवार, करियर हैं। लोकतंत्र में मतदान का अधिकार है, मगर यह दायित्व नहीं। कुछ लोग मतदान करके अपनी भूमिका पूरी कर लेते हैं और बाकी समय अपने काम में लगे रहते हैं। इसमें गलत क्या है?

निष्कर्ष

भारतीय लोकतंत्र निश्चित रूप से पूर्ण नहीं है, लेकिन इसकी आलोचना करते समय हमें संदर्भ और परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखना चाहिए। पारिवारिक राजनीति, भावनात्मक नेतृत्व, कठोर बहस, धीमी प्रशासनिक प्रक्रिया और नागरिक उदासीनता - इन सभी के अपने कारण और सकारात्मक पहलू भी हैं। हर समस्या को काला या सफेद नहीं माना जा सकता। कभी-कभी जो हमें कमजोरी लगती है, वह दरअसल हमारे लोकतंत्र की ताकत का प्रतीक हो सकती है।